

# मिथिला और जैनमत

डा० उपेन्द्र ठाकुर

मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

बौद्धधर्म के इतिहास में मिथिला (उत्तर बिहार) की जो महत्वपूर्ण भूमिका रही है, वही जैनधर्म के इतिहास में भी रही है। इस देश में मिथिला जैसे कम क्षेत्र हैं जिन्हें बौद्धों और जैनियों—दोनों का एक-सा सम्मान प्राप्त हुआ हो। जैनियों के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर वैशाली के ही एक सम्भ्रान्त परिवार में पैदा हुए थे और उन्होंने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष वहीं बिताये थे। वैशाली प्राचीन काल में मिथिला का ही एक अभिन्न अंग थी, किन्तु खेद की बात यह है कि ब्राह्मण ग्रन्थों और परम्पराओं में वैशाली की उपेक्षा की गयी है और हिन्दू धर्म के इतिहास में कहीं भी ऐसी कोई महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख नहीं है जो इस क्षेत्र से सम्बन्धित हो। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग जब सातवीं शताब्दी में यहाँ आया था, तो उसने इस स्थान में अनेक ध्वंसावशिष्ट हिन्दू मन्दिर, बौद्ध मठ और जैन प्रतिष्ठान देखे थे जहाँ काफी संख्या में निर्ग्रन्थ संन्यासी निवास करते थे। आश्चर्य तो यह है कि इसके बावजूद भी आधुनिक काल में पावापुरी अथवा चम्पा (भागलपुर) की भांति वैशाली न तो जैनियों का तीर्थ-स्थल हो बन सकी और न ही किसी ने अब तक यहाँ जैन पुरातात्विक अवशेषों की खोज करने की ही चेष्टा की है। पुरातत्त्वविदों ने तो इस दिशा में घोर उदासीनता दिखायी है। उन्होंने आज तक ह्वेनसांग—जैसे बौद्ध यात्रियों के द्वारा प्रस्तुत विवरणों तथा बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित बौद्ध तीर्थ-स्थलों एवं पुरातात्विक अवशेषों की खोज में ही अपना समय लगाया है और जैन पक्ष को घोर उपेक्षा की है। अब तक बसाढ़ (वैशाली) को जैनधर्म की जन्म-स्थली सिद्ध करने में ही वे लगे रहे जबकि इसके समर्थन में हमें पर्याप्त साहित्यिक साक्ष्य मिलते हैं जो अपने आप में पूर्ण माने जा सकते हैं<sup>१</sup>। प्रस्तुत निबन्ध में हम उन पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों पर विचार करेंगे जिनसे मिथिला (उत्तर बिहार) में जैनधर्म के उत्थान और विकास पर प्रकाश पड़ता है।

भारत के इतिहास में वैशाली का स्थान एक शक्तिशाली एवं सुनियोजित गणतंत्र और धार्मिक आन्दोलनों के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में काफी ऊँचा है। लिच्छवि गणतंत्र की पवित्र भूमि तथा विदेह गणराज्य की राजधानी—वैशाली-भगवान् महावीर की पवित्र जन्मभूमि के रूप में छठे सदी ई० पूर्व में हमारे समक्ष आती है। उनके पिता सिद्धार्थ ज्ञातृक वंश के प्रधान थे और उनकी पत्नी का नाम त्रिशला था जो वैशाली के राजा चेतक की बहन थी। उसे 'वेदेही' अथवा 'विदेहदत्ता' भी कहते हैं क्योंकि वह विदेह (मिथिला) के राजवंश की थी। इसीलिए महावीर 'विदेह', 'वेदेहदत्ता', विदेहजात्ये तथा 'विदेहसुकुमार'<sup>२</sup> के नाम से भी विख्यात हैं। वे वैशालिक तो थे ही। फलतः महावीर जहाँ एक ओर वैशाली के निवासी (पितृ-पक्ष से) थे, वहीं दूसरी ओर विदेह अथवा मिथिला के नागरिक (मातृ-पक्ष से) भी थे<sup>३</sup>। यही कारण है कि महावीर पर मिथिला का अधिकार कहीं अधिक था, क्योंकि उनके व्यक्तित्व एवं चरित्र-निर्माण में इस को सर्वाधिक देन था, जिसके फलस्वरूप कुछ ही वर्षों में जैनमत तथा आध्यात्मिक अनुशासन एवं संन्यास के प्रमुख केन्द्र के रूप में वैशाली को ख्याति समस्त उत्तर भारत में फैली। भगवान् महावीर के अतिरिक्त, बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य का भी चम्पापुर (भागलपुर, जो उस समय विदेह का ही अंग था) में निर्वाण प्राप्त हुआ था तथा इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ का जन्म भी मिथिला में ही हुआ था। स्वयं महावीर ने वैशाली में बारह तथा मिथिला में छह वर्षा-वास बिताये थे<sup>४</sup>।

इसी प्रकार बुद्ध के जीवन-काल में भी लिच्छवि, मल्ल तथा काशी-कोसल के राज्य ही महावीर तथा अन्य निर्ग्रन्थ अनुयायियों के कार्य-क्षेत्र थे। बौद्ध-ग्रन्थों से भी यह ज्ञात होता है कि राजगृह, नालन्दा, वैशाली तथा पावापुरी और सावत्थी (श्रावस्ती) भगवान् महावीर तथा उनके अनुयायियों के समस्त धार्मिक कार्यों के क्षेत्र थे। यही कारण है कि वैशाली में महावीर के बहुत से लिच्छवि और विदेह समर्थक थे<sup>१८</sup>। उनके कुछ अनुयायी समाज के काफी उच्च वर्ग के थे। 'विनयपिटक' के अनुसार, लिच्छवि सेनापति 'सिंह' पहले महावीर के अनुयायी थे, बाद में बौद्ध हो गये। पाँच सौ लिच्छवियों की सभा में सच्चक नाम के एक निगण्ठ (निर्ग्रन्थ) ने बुद्ध को दार्शनिक सिद्धान्तों की चर्चा करते समय चुनौती दी थी।<sup>१९</sup> बौद्ध ग्रन्थों में प्राप्त अनेक दृष्टान्तों<sup>२०</sup> से पता चलता है कि बुद्ध के समय में वैशाली और विदेह के नागरिकों पर महावीर का कितना अधिक प्रभाव था। जैनियों का मत है कि विदेह अथवा मिथिला भी जैन आर्य देशों का ही एक अभिन्न अंग था क्योंकि यहीं तित्थयारों, गवकवट्टियों, बलदेवों और वामुदेवों का जन्म हुआ था, यहीं सिद्धि मिली थी और उनके उपदेशों के फलस्वरूप इन क्षेत्रों के अनेक नागरिकों ने संन्यास लेकर ज्ञान-प्राप्ति की थी<sup>२१</sup>। इस प्रकार भारत के धार्मिक क्षेत्र में वैशाली की ख्याति बहुत पहले ही फैल चुकी थी और महावीर द्वारा दीक्षित वहाँ के धर्मोपदेशक अपनी सदाचारित एवं आनुशासनिक कट्टरता के फलस्वरूप तत्कालीन समाज में दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त कर चुके थे। वैशाली की इसी ख्याति के फलस्वरूप 'गुरु' की खोज में सिद्धार्थ (बोधिसत्त्व) वहाँ पहुँचे थे और वहाँ के ख्यातिलब्ध साधक आलार-कलाम से दीक्षित हुए थे। आलार-कलाम के सम्बन्ध में ऐसी जनश्रुति है कि "वह अपनी साधना में इतने आगे बढ़ चुके थे कि मार्ग पर बैठे रहने पर यदि ५०० बैलगाड़ियाँ उनके बगल से गुजर जातीं, तो भी उनकी घरघराहट को वह नहीं सुन पाते<sup>२२</sup>।" श्रीमती रिज डेविड्स का तो ऐसा मत है कि वैशाली में ही बुद्ध को दो 'गुरु' मिले—आलार तथा उद्दक। इनकी शिक्षा से प्रभावित होकर उन्होंने अपना धार्मिक जीवन एक जैन की भाँति प्रारम्भ किया।<sup>२३</sup> एक जैनी के रूप में अत्यन्त कठोर अनुशासनित जीवन व्यतीत करने के फलस्वरूप उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने जैन-मार्ग त्यागकर मध्यम-मार्ग अपनाया और शीघ्र ही उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। यही मार्ग बाद में चलकर बौद्धमत की आधार-शिला बना। फलतः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बौद्धधर्म के उत्थान और विकास के बहुत पूर्व से ही वैशाली और विदेह (मिथिला) जैनधर्म के प्रमुख केन्द्र के रूप में काफी ख्यात हो चुके थे।

: २ :

महावीर और बुद्ध के समय उत्तरी भारत की सामाजिक और धार्मिक नीति एक-सी थी। जाति-व्यवस्था, जन्म-सुविधाओं का दुरुपयोग तथा धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मणों का एकाधिकार—इनके फलस्वरूप जिस नयी संस्था (पुरोहितवाद) का जन्म हुआ था, वह समाज के अंग-अंग को अपने खूँखार चंगुल में जकड़ चुकी थी। उससे मुक्त होने के लिए सामान्यजन छटपटा रहे थे। ठीक, उसी समय जनक, विदेह और याज्ञवल्क्य—जैसे उपनिषद्-युगीन क्रांतिकारी ऋषियों और दार्शनिकों ने इस 'पुरोहितवाद' पर भयंकर आघात किया, उसकी घोर भर्त्सना की। फलस्वरूप ब्राह्मण-धर्म के क्षेत्र में एक नयी क्रांति आयी, यज्ञ तथा धर्म के नाम पर सदियों से फैली कुरीतियाँ को भयंकर आघात पहुँचा। ठीक इसी समय महावीर भी भारत के धार्मिक क्षितिज पर अवतरित हुए।<sup>२४</sup> ब्राह्मण ऋषियों और दार्शनिकों द्वारा चलाये गये इस धार्मिक आन्दोलन के फलस्वरूप, कुछ साधारण परिवर्तनों के साथ पार्श्वनाथ के धर्म का प्रचार-प्रसार करने का महावीर को विलक्षण संयोग प्राप्त हुआ। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि मनुष्य को शान्ति और सहायता के लिए कहीं और देखने की आवश्यकता नहीं है, वह उसका निदान अपने अन्दर ही ढूँढ़ सकता है। उनके उपदेश इतने प्रभावोत्पादक थे कि ब्राह्मणों के एक वर्ग ने भी महान् शिक्षक के रूप में उनका सम्मान किया, उन्हें मान्यता दी<sup>२५</sup>। वास्तविकता तो यह है कि बुद्धिजीवी ब्राह्मणों ने समय-समय पर जैनियों को भी वैसी ही सहायता की, जिस प्रकार उन्होंने बौद्धों की सहायता की थी और विद्या के क्षेत्र में उनकी प्रेरणा से जैनियों की प्रतिष्ठा को काफी

बल मिला था। किन्तु प्रारम्भ में जाति-व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पन्न कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाने के कारण जैनधर्म की लोकप्रियता समाज के निधन तथा निम्न वर्गों में उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। महावीर की दृष्टि में चाहे ब्राह्मण हों अथवा शुद्र, उच्च वर्ग का हो अथवा निम्न वर्ग का—सभी समान थे। उनके अनुसार कोई भी व्यक्ति जन्म से नहीं, अपितु सुकार्यों एवं सद्गुणों से ब्राह्मण होता है। चाण्डाल भी अपनी प्रतिभा और सद्कार्यों द्वारा समाज में उच्चतम स्थान प्राप्त कर सकता है। ब्राह्मणधर्म की भाँति ही जैनधर्म आत्मा के स्थानान्तरण और पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्ति में विश्वास करता है<sup>१३</sup> किन्तु, इसके लिये ब्राह्मणधर्म में जिस संयम और तपस्या की अवस्था है, उसे वह नहीं मानता। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दोनों में अन्तर बहुत कम है और वह भी बहुत कुछ जाति-व्यवस्था के प्रति दोनों धर्मों के दृष्टिकोण से स्पष्ट हो जाता है। महावीर ने वास्तव में न तो जाति-व्यवस्था का विरोध किया और न ही उससे सम्बन्धित सभी बातों को स्वीकार किया। उनका कहना था कि पूर्वजन्म के अच्छे या बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही किसी मनुष्य का जन्म ऊँची अथवा नीची जातियों में होता है, किन्तु वह अपने पवित्र आचरण और प्रेम द्वारा आध्यात्मिकता को प्राप्त कर निर्वाण के अन्तिम सोपान तक पहुँच सकता है। महावीर के अनुसार जाति-व्यवस्था तो परिस्थिति-गत है और किसी भी आध्यात्मिक व्यक्ति के लिये इसके बन्धन को सदा के लिये तोड़ देना आसान है<sup>१४</sup>। ईश्वरीय अवदान किसी सम्प्रदाय-विशेष, अथवा संघ-विशेष का एकाधिकार नहीं है और इस दृष्टि से नर व नारी में कोई अन्तर नहीं है<sup>१५</sup>। यही कारण है कि एक ओर जहाँ बौद्धों और ब्राह्मण दार्शनिकों में लगभग एक सदी तक दार्शनिक धागुद्ध चलता रहा, वहीं दूसरी ओर जैनियों के प्रति ब्राह्मण अपेक्षाकृत अधिक उदार और संवेदनशील रहे।

: ३ :

यह सही है कि जैन और ब्राह्मण दार्शनिकों ने एक दूसरे के मतों का खण्डन किया है, किन्तु यह आलोचना मात्र प्रसंगवश जान पड़ती है, न कि सुनियोजित रूप में एक दूसरे के सिद्धान्तों का खण्डन करने के लिए। इसीलिए उनकी भाषा में कहीं कटुता अथवा उग्रता के भाव नहीं दिखायी पड़ते। महावीर ने अपने अनुयायियों को पूर्व-मीमांसा का अध्ययन करने के लिए उत्साहित किया था, ताकि वे दार्शनिक वाद-विवाद में सही-सही ढंग से तर्क उपस्थित कर सकें। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार निग्रन्थ मुनियों और उनके अनुयायियों में कई ऐसे दार्शनिक थे जो अपनी प्रतिभा के कारण काफी प्रख्यात थे<sup>१६</sup>। मध्यकालीन तर्क-शास्त्र वस्तुतः जैन और बौद्ध नैयायिकों के हाथ में था और लगभग एक हजार वर्षों तक (ई० पू० ६०० से ४०० ई० तक) धर्म तथा आत्मतत्त्वज्ञान से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्तों के निरूपण तथा व्याख्या में ये दार्शनिक लगे रहे, यद्यपि इनके ग्रन्थों में तर्क-शास्त्र का उल्लेख यदा-कदा ही मिलता है। लगभग ४०० ई० और उसके बाद से इन्होंने तर्क-शास्त्र के विभिन्न पक्षों का गम्भीर अध्ययन प्रारम्भ किया और यही कारण है कि तर्कशास्त्र से सम्बन्धित जितने भी जैन और बौद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे चौथी सदी ई० के बाद के हैं<sup>१७</sup>। आठवीं शताब्दी में श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अधिकांश नैयायिकों का कार्यक्षेत्र उज्जयिनी (सालवा) तथा बल्लभी (गुजरात) में था जबकि दिगम्बर सम्प्रदाय के नैयायिकों के कार्य-कलाप पाटलिपुत्र और द्रविड़ (कर्नाटक सहित) क्षेत्रों में सीमित थे। सिद्धसेन दिबाकर प्रणीत 'न्यायावतार' (लगभग ५३३ ई०) को जैन-न्याय का प्रथम वैज्ञानिक तथ्य सम्बद्ध ग्रन्थ माना जा सकता है<sup>१८</sup>, जबकि मध्यकालीन तर्कशास्त्र (न्यायशास्त्र) के वास्तविक संस्थापक बौद्ध नैयायिक ह्यं थे<sup>१९</sup>।

इसी समय पाटलिपुत्र में दिगम्बर जैन नैयायिक विद्यानन्द (८०० ई०) हुए थे जिन्होंने 'आप्तमीमांसा' पर 'आप्तमीमांसाङ्कृति' ('अष्टसहस्रों') नाम की एक विशद टीका लिखी थी। इसमें सांख्य, योग, वैशेषिक, अद्वैत, मीमांसक तथा सौगत, तथागत अथवा बौद्ध दर्शन की कटु आलोचना की गयी है। विद्यानन्द ने इस प्रसंग में दिनानाग, उद्योतकर, धर्मकीर्ति, प्रज्ञाकर, शबरस्वामी, प्रभाकर तथा कुमारिल की भी चर्चा की है<sup>२०</sup>। उनके उत्तरवर्ती जैन नैयायिकों ने अपने ग्रन्थों में हिन्दू तथा बौद्ध दार्शनिकों के सिद्धान्तों का खण्डन किया है।

उस समय बौद्ध, जैन और ब्राह्मण नैयायिकों में निरन्तर दार्शनिक वाद-विवाद होते रहते थे। बौद्ध और ब्राह्मण नैयायिकों के बीच कभी-कभी तो यह विवाद बहुत ही उग्र हो जाता था पर जैन और ब्राह्मण दार्शनिकों के बीच इस प्रकार की कटुता कभी भी उत्पन्न नहीं होती थी। वास्तविकता तो यह है कि श्रमण-मुनि (जैन) तथा वैदिक ऋषि इतिहास के प्रारम्भ से हो एक साथ अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करते रहे, यद्यपि उनके आदर्शों और कार्य-प्रणाली में भिन्नता रही। यह सही है कि कभी-कभी दोनों पक्षों के बीच प्रतिस्पर्धा और असहिष्णुता तीव्र हो उठती क्योंकि उनके आदर्श बहुत हद तक एक दूसरे से भिन्न थे, फिर भी सामान्य जनों में उनकी प्रतिष्ठा बनी रही। इसके परिणाम-स्वरूप शनैः शनैः ये दोनों शब्द 'ऋषि' और 'मुनि'—एक दूसरे के पर्यायवाची हो गये<sup>११</sup>। और, एक समय ऐसा भी आया जब श्रमण मुनियों ने यह दावा किया कि वास्तव में वे ही सच्चे ब्राह्मण हैं<sup>१२</sup>। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये दार्शनिक वाद-विवाद, भारतीय दर्शन के लिए अमूल्य वरदान सिद्ध हुए जिसके फलस्वरूप भारतीय तर्कशास्त्र का असाधारण विकास एवं प्रचार हुआ।

: ४ :

यद्यपि किसी अशोक अथवा हर्षवर्धन द्वारा जैन धर्म का प्रचार-प्रसार नहीं किया गया, फिर भी ऐसे कई शासकों के दृष्टान्त हमारे सामने हैं जिन्होंने इस धर्म को स्वीकार कर लिया था। जैन सूत्रों के अनुसार पार्श्वनाथ काशी-नरेश अश्वसेन के पुत्र थे। 'सूत्रकृतांग' और अन्य जैन ग्रन्थों से यह स्पष्ट है कि राजघरानों में पार्श्वनाथ का काफी प्रभाव था और महावीर के समय में भी मगध तथा आसपास के क्षेत्रों में बहुत बड़ी संख्या में उनके अनुयायी थे<sup>१३</sup>। स्वयं महावीर का परिवार भी पार्श्वनाथ का ही अनुयायी था<sup>१४</sup>। छठी सदी ई० पूर्व में जब महावीर ने जैन संघ में सुधार किये, तो उन्हें पार्श्वनाथ के इन अनुयायियों को सन्तुष्ट कर अपने नये संशोधित समुदाय में सम्मिलित होने के लिये काफी प्रयास करना पड़ा था।

पार्श्वनाथ की भाँति ही महावीर का भी सम्बन्ध राजवंशों से था। तत्कालीन षोडश महाजनपद में जो 'अट्टकुल' (अष्टकुल) थे, उनमें विदेह, लिच्छवि, जात्रिक तथा बज्जि वंशों का प्रमुख स्थान था। इसके अतिरिक्त, जैन सूत्रों में ऐसे बहुत साक्ष्य हैं जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि जैनमत में विदेहों की काफी रुचि थी। मिथिला के जनक राजवंश के संस्थापक निमि (नामि अथवा नेमि) के बारे में जैन सूत्रों में ऐसा उल्लेख आया है कि उन्होंने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया था<sup>१५</sup>। इसके अतिरिक्त, महावीर ने मिथिला में छह वर्षा-वास बिताये थे। वास्तविकता चाहे जो भी हो, इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि मिथिला में कम से कम एक वर्ग तो ऐसा था जो महावीर का अनन्य भक्त था।

प्राचीन अंग (आधुनिक भागलपुर जो प्राचीन भारत में विदेह का ही एक अंग था) की राजधानी चम्पा भी जैन-कार्यकलापों का एक प्रमुख केन्द्र थी जहाँ महावीर ने तीन 'वर्षा-वास' किये थे। 'उवासगदसाओं' तथा 'अंतगडदसाओं' से हमें ज्ञात होता है कि महावीर के शिष्य सुधर्मन—जो उनके निर्वाण के पश्चात् जैन समुदाय के प्रधान हुए<sup>१६</sup>—के समय में चम्पा में पुष्पभद्र (पूर्णभद्र) मन्दिर का निर्माण किया गया था। कहते हैं, कुणिक अजातशत्रु के शासन-काल में सुधर्मन का इस नगर में पदार्पण हुआ था और गणधर के दर्शन के लिए स्वयं अजातशत्रु नंगे पाँव नगर से बाहर उनका स्वागत करने गया था। बाद में सुधर्मन के उत्तराधिकारियों ने भी इस नगर का भ्रमण किया<sup>१७</sup>। अतः इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं कि वैशाली के लिच्छवियों की सहायता के फलस्वरूप महावीर को सभी दिशाओं से समर्थन मिला और देखते-देखते जैनधर्म का प्रभाव इस समय के प्रमुख शक्तिशाली राज्यों—सीवीर, अंग, वत्स, अवन्ति, विदेह (मिथिला) और मगध में उत्तरोत्तर बढ़ता गया। यही कारण है कि बौद्ध ग्रन्थों में वैशाली की काफी चर्चा के बावजूद भी, चेतक का कोई उल्लेख नहीं मिलता। जैकोबी का यह कथन सही जान पड़ता है कि बौद्धों ने उसकी उपेक्षा जानबूझ कर की है। उसने अपने प्रतिद्वन्द्वियों (जैनियों) की समृद्धि में अधिक अभिरुचि नहीं दिखायी। किन्तु जैनियों ने अपने तीर्थंकर के उस

निकट सम्बन्धी तथा संरक्षक (चेतक) की यत्र-तत्र ससम्मान चर्चा की है। यह उन्हीं के अथक प्रयास का फल था कि वैशाली उस समय जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र थी जिसके फलस्वरूप बौद्ध संन्यासी उसे हेय दृष्टि से देखते थे।

जैन सूत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि विदेहों और लिच्छवियों की भाँति मल्ल भी महावीर के अनन्य भक्त थे। 'कल्पसूत्र' के अनुसार 'परम जिन' के निर्वाण के अवसर पर लिच्छवियों की भाँति मल्लों ने भी उपवास व्रत रखा और सर्वत्र दीप जलाये। 'अन्तगड्दसाओ' में भी इस बात की विशद चर्चा की गयी है कि बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टेमि अथवा अरिष्टनेमि (विदेह राजा) के बःबरइ-आगमन पर उग्रों, मोगों, क्षत्रियों तथा लिच्छवियों के साथ मल्ल भी उनका स्वागत करने गये थे<sup>३८</sup>। इसी प्रकार काशी तथा कोसल गणराज्यों में भी जैनधर्म की लोकप्रियता थी और बिम्बसार, नन्द, चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्प्रति, खारवेल आदि के समान अन्य कई शासक इस धर्म से काफी सम्बन्धित थे।

गुप्तकाल में जैनधर्म के इतिहास में एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना घटी। इसी युग में जैनियों के धार्मिक एवं अन्य साहित्य का संग्रह और सम्पादन हुआ था। इससे यह स्पष्ट है कि जैनी करोब-करोब समस्त भारत में इस समय तक फैल चुके थे। साथ ही, छठी शताब्दी और उसके बाद के अभिलेखों में जैन सम्प्रदायों की काफी चर्चा मिलती है। ह्वेनसांग ने भी अपने विवरण में लिखा है कि जैनधर्म भारत में तो फैल ही चुका था, उसके बाहर भी उसका प्रभाव धीरे-धीरे फैल रहा था। लेकिन तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी तक आते-आते हम देखते हैं कि उत्तर बिहार (मिथिला) और उसके आस-पास के क्षेत्र में जैनधर्म और बौद्धधर्म का काफी ह्रास हो चुका था। तेरहवीं सदी के स्वनामधन्य तिब्बती बौद्ध यात्री धर्मस्वामी के विवरण में कहीं भी बौद्धों और जैनों का उल्लेख नहीं मिलता। उसने तिरहुत (मिथिला) को "बौद्ध-विहीन राज्य" कहा है।<sup>३९</sup>

: ५ :

साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त पूरे उत्तरी भारत में जैन कला और स्थापत्य कला के पर्याप्त अवशेष मिले हैं। स्थापत्य कला को जैनियों की जो देन है, उसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। यद्यपि बिहार में जैन कला-कृतियाँ पर्याप्त संख्या में मिली हैं, फिर भी उत्तर बिहार (मिथिलांचल) में उनकी संख्या बहुत ही कम है, इसलिये इस क्षेत्र की जैन कला का सम्बद्ध इतिहास प्रस्तुत करना बड़ा ही कठिन है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि वैशाली क्षेत्र में भी जैन कला-कृतियों के अवशेष उपलब्ध नहीं हैं। स्मिथ महोदय के अनुसार १८९२ ई० में बनिया ग्राम से ५०० गज पश्चिम जमीन में लगभग ८ फीट नीचे गड़ी हुई तीर्थंकरों की दो मूर्तियाँ—एक बैठी और दूसरी खड़ी—प्राप्त हुई थीं।<sup>४०</sup> किन्तु ब्लाक महोदय ने इसको प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया है<sup>४१</sup> : गैरिक महोदय ने<sup>४२</sup> भी उन मूर्तियों की चर्चा करते हुए कहा है कि जब वह उस गाँव में चहुँचे, तो इतनी रात हो चुकी थी कि अंधेरे में उन मूर्तियों का सही-सही अध्ययन और मूल्यांकन सम्भव नहीं था।

किन्तु साहित्यिक साक्ष्य इससे भिन्न हैं। जैन साहित्य में वैशाली-स्थित अनेक जैन कलाकृतियों के प्रसंग मिलते हैं। जैन ग्रन्थ उवासगड्दसाओ<sup>४३</sup> से ज्ञात होता है कि जैन ज्ञात्रिकों ने अपने कोलाग-स्थित क्षेत्र में एक जैन-मन्दिर बनवाया था जिसे 'चइय' कहा गया है। इसका अर्थ है 'मन्दिर' अथवा 'पवित्र स्थान' जहाँ पर उद्यान अथवा पार्क (उज्जवान', 'वभसण्ड' या 'वन-खण्ड), मन्दिर तथा सेवक-गृह हो। वहीं कुण्डपुर में महावीर यदा-कदा अपने शिष्यों के साथ आकर विश्राम करते थे।<sup>४४</sup>

बौद्ध परम्पराओं की भाँति ही, जैन-परम्पराओं में भी तीर्थंकरों (जिन) की समाधि पर स्तूप-निर्माण की प्रथा थी। इसी कोटि का एक स्तूप जिन मुनि-सुव्रत की समाधि पर वैशाली में बना था और दूसरा मथुरा में सुपाश्वनाथ का।<sup>४५</sup> जैनधर्म में स्तूप-पूजा की प्रधानता थी। वैशाली-स्थित उक्त स्तूप का उल्लेख करते हुए "आवश्यकचूर्णि" में 'पारिणामिकी बुद्धि' की व्याख्या के सन्दर्भ में 'शुभ' की कथा दी है जिससे यह स्पष्ट है कि 'निर्युक्ति' के लेखक

को वैशाली-स्थित मुनि-सुव्रत स्तूप की पूरी जानकारी थी। कौशाम्बी और वैशाली में जो उत्खनन हुए हैं, उनसे पता चलता है कि तथाकथित 'नार्थन ब्लैक पॉलिस्ट डेयर' विभिन्न रंगों में उपलब्ध था और कभी-कभी चित्रित भी किया जाता था। यद्यपि हमें इस तकनीक अथवा शैली का निश्चित उद्भव-स्थल ज्ञात नहीं है, फिर भी पुरातत्त्वविदों का ऐसा अनुमान है कि सम्भवतः इस शैली की उत्पत्ति और विकास मगध में ही हुआ था।

'महापरिनिव्वाणसुत्त' में जिस 'बहुपुत्तिका-चेतियम्' की चर्चा की गयी है, सम्भवतः वह विशाला (वैशाली) और मिथिला-स्थित वही चैत्य है जिसका उल्लेख जैन 'भगवती' और 'विपाक' सूत्रों में किया गया है। यह 'चैत्य' हारीति नाम की देवी को समर्पित किया गया था जिसकी बाद में बौद्धों ने देवी के रूप में पूजा आरम्भ की। 'औपपातिक सूत्र' में जिस पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन किया गया है, अधिकांश बौद्ध चेतिय अथवा चैत्य उसी के अनुरूप थे। होएर्नलेने 'चेतिय' की जो व्याख्या की है, उसकी पुष्टि 'औपपातिकसूत्र' में पूर्णभद्र चैत्य के वर्णन से हो जाती है। कहते हैं, यह चैत्य चम्पा नगर के उत्तर-पूर्व स्थित आग्रशालवन के उद्यान में था। यह अत्यन्त पुरातन (चिरातीत) था जो प्राचीन काल के लोगों द्वारा 'ज्ञात' मान्य एवं प्रशंसित था। इसे छत्र, शंख, ध्वज, 'अतिपताका', मयूर-पंख (लोमपत्थग) तथा घंटों (वित्तिका-वेदिका) से सुसज्जित किया गया था। इस पर चारों ओर सुगन्धित जल का सिंचन होता रहता था और चतुर्दिग पुष्प-मालाएँ सजी रहती थीं। विभिन्न रंगों और सुगन्ध के फूल बिखरे जाते थे और नाना प्रकार की धूपबत्तियाँ (कालागुरु, कुंथु, हक्क तथा रुक्क) जलती रहती थीं। यहाँ एक-से-एक अभिनेता, विडम्बक, संगीतज्ञ, वीणा-वादक आदि आकर अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। लोग तरह-तरह का उपहार लेकर यहाँ श्रद्धापूर्वक आते थे। चतुर्दिग विशाल वनखण्ड फैला था जिसके मध्य में एक बहुत बड़ा अशोक वृक्ष (चैत्य-वृक्ष) खड़ा था जिसकी शाखा में एक 'पृथ्वी-शिला-पट्ट' जुड़ा हुआ था।

कुछ समय पूर्व पालकालीन कृष्ण प्रस्तर-निर्मित महावीर की एक मूर्ति वैशाली में पायी गयी थी जो तालाब के निकट वैशाली गढ़ के पश्चिम-स्थित एक आधुनिक मन्दिर में सम्प्रति रखी हुई है। यह मूर्ति अब 'जैनेन्द्र' के नाम से विख्यात है और देश के कोने-कोने से जैन श्रद्धालु वैशाली आकर इसकी पूजा करते हैं।<sup>35</sup> वैशाली उत्खनन में प्राप्त एक दूसरी जैन मूर्ति का भी हमें उल्लेख मिलता है। सामान्य लोगों का ऐसा विश्वास है कि उत्तर मंगेर-स्थित जयमंगलगढ़ जैनियों के कार्य-कलापों का एक प्राचीन केन्द्र था, पर उसकी पुष्टि में कोई भी ठोस साहित्यिक अथवा पुरातात्विक प्रमाण आज तक नहीं मिला है। जनश्रुति के अनुसार मौर्य शासक सम्प्रति भी जैनधर्म का बहुत बड़ा पोषक एवं संरक्षक था जिसने कई जैन मन्दिर बनवाये थे<sup>36</sup> जिनके अवशेष दुर्भाग्यवश अब नहीं मिलते।

प्राचीन अंग (आधुनिक भागलपुर जिला, जिसके कुछ अंश प्राचीन काल में मिथिला के अंग थे) में हमें जैन कलाकृतियों के कुछ अवशेष मिलते हैं। मंदार पर्वत जैनियों का बहुत पवित्र तीर्थ-स्थल माना जाता है। यहीं पर वारहवें तीर्थंकर वासु पूज्यनाथ को निर्वाण प्राप्त हुआ था। यहाँ का पर्वत-शिखर जैन सम्प्रदाय के लिये अत्यन्त पवित्र एवं आदृत है। कहते हैं, यह भवन खंड श्रावकों (जैनों) का था और उसके एक कमरे में आज भी 'चरण' सुरक्षित रखा हुआ है। इस पर्वत-शिखर पर और भी कतिपय जैन-अवशेष प्राप्त हुए हैं।<sup>37</sup> १९६१ ई० में वैशाली उत्खनन में भी कुछ जैन पुरातात्विक अवशेष मिले थे। भागलपुर के निकट कर्णगढ़ पहाड़ी में भी पर्याप्त जैन अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ के प्राचीन दुर्ग के उत्तर में स्थित एक जैन बिहार का भी प्रसंग आया है। यदि उत्तर बिहार के अबतक उपेक्षित किन्तु महत्वपूर्ण प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों पर बड़े पैमाने पर उत्खनन कार्य किये जायें, तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि इन क्षेत्रों से पर्याप्त संख्या में जैन पुरातात्विक अवशेष प्रकाश में आयेंगे।

वास्तुकला की दृष्टि से, मिथिला में ऐसा कोई महत्वपूर्ण अवशेष अबतक प्राप्त नहीं हो पाया है। वास्तुकला के अधिकांश अवशेष दिगम्बर सम्प्रदाय के हो हैं।



## सन्दर्भ

१. हिं० ए० स्मिथ, 'इनसाइक्लोपेडिया ऑफ रिलिजन एंड एथिक्स, भाग-१२, पृ० ५६८-६८, न्यूयार्क, १९२१ ।
२. आचारांग सूत्र, ३८९ ।
३. जैकोबी, 'जैन-सूत्र', भाग-२; सी० जे० शाह, 'जैनज्म' इन नार्थ इंडिया, पृ० २३-२४ ।
४. 'कल्पसूत्र' (बी० सी० लॉ० सम्पादित) पृ० ३२ ।
५. बी० सी० लॉ, 'महावीर', पृ० ७ । ६. 'विनयपिटक', ('सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट', भाग-१७) पृ० १०८ ।
७. 'मज्झिमनिकाय', १, २२७-३७ ।
८. 'अंगुत्तरनिकाय', २, पृ० १९०-१४ तथा पृ० २००-२; 'संयुत', ५, पृ० ३८९-९०; 'अंगुत्तर', ३, पृ० १६७ ।
९. महापरिनिव्वाण सुत्तन्त, ४।३५ । १०. आर० के० मुकजी, उपरिवत्, पृ० ५ ।
११. एस० एन० दासगुप्ता, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी, भाग-१, पृ० २०; मुनि रत्नप्रभा, विजय, 'श्रमण भगवान् महावीर', भाग-१, खण्ड-१, पृ० ५ ।
१२. 'कल्पसूत्र (मुखबोधिका टीका), पृ० ११२, १८ ।
१३. 'सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, भाग-२२, पृ० २१३ ।
१४. सी० जे० शाह, 'जैनज्म इन नार्थ इण्डिया', पृ० २० ।
१५. बी० सी० लॉ, 'महावीर', पृ० ४४ । १६. 'मज्झिमनिकाय', १।२२७, ३७४-७५ ।
१७. एस० सी० विद्याभूषण, 'इण्डियन लाजिक : मेडिक्ल स्कूल', प्रस्तावना, पृ० १८ ।
१८. एस० सी० विद्याभूषण, 'इण्डियन लाजिक : मेडिक्ल स्कूल', प्रस्तावना, पृ० १९ ।
१९. उपेन्द्र ठाकुर, 'जैनज्म एण्ड बुद्धिज्म इन मिथिला; अध्याय ३ । २०. अष्टसहस्री, अध्याय-१ ।
२१. एच० एल० जैन, उपरिवत्, पृ० २ । २२. उपरिवत्, पृ० २ ।
२३. सी० जे० शाह, उपरिवत्, पृ० ८२-८३ । २४. उपरिवत्, पृ० ८३-८४ ।
२५. 'उत्तराध्ययन सूत्र, ९; ६१ । २६. 'उवासगदसाओ', (होएनले सम्पादित), २, पृ० २ ।
२७. सी० जे० शाह, 'उपरिवत्, पृ० ९४-९५, ३२२, ११-१००, १०८-१११, २०४-१६ ।
२८. एल० डी० बार्नेट, 'दि अंतगड-दसाओ' तथा 'अणुत्तरोववाइय-दसाओ', पृ० ३६ ।
२९. 'वायोप्राफी आफ धर्मस्वामिन्', (जी० शेरिक सम्पादित), पृ० ६० ।
३०. जर्नल आफ दि रीयल एशियाटिक सोसोइटी, १९०२, पृ० २८२ ।
३१. आर्किओलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, रिपोर्ट, १९०३-०४, पृ० ८७ ।
३२. आर्किओलोजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग १६, पृ० ९१ ।
३३. हारनैले, उपरिवत्, भाग-१, पृ० २, भाग २, पृ० २ ।
३४. यू० पी० शाह, 'स्टडीज इन जैन आर्ट, पृ० ४३-४५, ७१, ५५ ।
३५. यू० पी० शाह, उपरिवत्, पृ० ९ ।
३६. उपेन्द्र ठाकुर, स्टडीज इन जैनज्म एण्ड बुद्धिज्म इन मिथिला, अध्याय ३ ।
३७. बृहत् कल्प-भाष्य, भाग ३, गाथा ३२८५-८९, पृ० ७१७-२१ ।
३८. बेगलर, आर्किओलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग-३; कुरेशी, एसियेट मोन्युमेंट्स ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा, (भागलपुर खण्ड) ।